

॥ श्री-सावित्री-व्रतम् — कामाक्षी-पूजा ॥

॥ पूर्वाङ्ग-विघ्नेश्वर-पूजा ॥

(आचम्य)

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

प्राणान् आयम्य। ॐ भूः + भूर्भुवः सुवरोम्।

(अप उपस्पृश्य, पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा)

ममोपात्त-समस्त-दुरित-क्षयद्वारा

श्री-परमेश्वर-प्रीत्यर्थं करिष्यमाणस्य कर्मणः

अविघ्नेन परिसमाप्यर्थम् आदौ विघ्नेश्वरपूजां करिष्ये।

ॐ गणानां त्वा गणपतिः हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतु आ नः शृण्वन्तुतिभिः सोद्द सादनम्॥

अस्मिन् हरिद्राबिम्बे महागणपतिं ध्यायामि, आवाहयामि।

ॐ महागणपतये नमः आसनं समर्पयामि।

पादयोः पादं समर्पयामि। हस्तयोरर्धं समर्पयामि।

आचमनीयं समर्पयामि।

ॐ भूर्भुवस्सुवः। शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

स्नानानन्तरमाचमनीयं समर्पयामि।

वस्त्रार्थमक्षतान् समर्पयामि।

यज्ञोपवीताभरणार्थं अक्षतान् समर्पयामि।

दिव्यपरिमलगन्धान् धारयामि।

गन्धस्योपरि हरिद्राकुङ्कुमं समर्पयामि। अक्षतान् समर्पयामि।
पुष्पमालिकां समर्पयामि। पुष्पैः पूजयामि।

॥ अर्चना ॥

- | | |
|---------------------|--------------------------|
| १. ॐ सुमुखाय नमः | ९. ॐ धूमकेतवे नमः |
| २. ॐ एकदन्ताय नमः | १०. ॐ गणाध्यक्षाय नमः |
| ३. ॐ कपिलाय नमः | ११. ॐ फालचन्द्राय नमः |
| ४. ॐ गजकर्णकाय नमः | १२. ॐ गजाननाय नमः |
| ५. ॐ लम्बोदराय नमः | १३. ॐ वक्रतुण्डाय नमः |
| ६. ॐ विकटाय नमः | १४. ॐ शूर्पकर्णाय नमः |
| ७. ॐ विघ्नराजाय नमः | १५. ॐ हेरम्बाय नमः |
| ८. ॐ विनायकाय नमः | १६. ॐ स्कन्दपूर्वजाय नमः |

नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि॥

धूपमात्रापयामि।

अलङ्कारदीपं सन्दर्शयामि।

नैवेद्यम्।

ताम्बूलं समर्पयामि।

कर्पूरनीराजनं समर्पयामि।

कर्पूरनीराजनानन्तरमाचमनीयं समर्पयामि।

वक्रतुण्डमहाकाय कोटिसूर्यसमप्रभा।
अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

प्रार्थनाः समर्पयामि।

अनन्तकोटिप्रदक्षिणमस्कारान् समर्पयामि।

छत्रचामरादिसमस्तोपचारान् समर्पयामि।

॥ प्रधान-पूजा — श्री-कामाक्षी-पूजा ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

॥ सङ्कल्पः ॥

ममोपात्त-समस्त-दुरित-क्षयद्वारा श्री-परमेश्वर-प्रीत्यर्थं शुभे शोभने मुहूर्ते अद्य ब्रह्मणः द्वितीयपरार्धे श्वेतवराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमे पादे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे मेरोः दक्षिणे पार्श्वे शकाब्दे अस्मिन् वर्तमाने व्यावहारिकाणां प्रभवादीनां षष्ठ्याः संवत्सराणां मध्ये () नाम संवत्सरे उत्तरायणे शिशिर-ऋतौ कुम्भ-मासे (शुक्र / कृष्ण)पक्षे () शुभतिथौ (इन्दु / भौम / सौम्य / गुरु / भृगु / स्थिर / भानु)-वासरयुक्तायां ()-नक्षत्र-()-योग-()-करण-युक्तायां च एवं गुण विशेषण विशिष्टायाम् अस्याम्

() शुभतिथौ श्रीपरमेश्वर-प्रीत्यर्थं कामाक्ष्याः प्रीत्यर्थं कामाक्ष्याः प्रसादेन मम दीर्घं सौमाङ्गल्य-अवास्थर्थं मम भर्तुश्च अन्योन्यप्राप्त्यर्थम् अवियोगार्थं यथाशक्ति-ध्यान-आवाहनादि-षोडशोपचारैः श्रीकामाक्षी-पूजां करिष्ये। तदङ्गं कलशपूजां च करिष्ये।

श्रीविघ्नेश्वराय नमः यथास्थानं प्रतिष्ठापयामि। शोभनार्थं क्षेमाय पुनरागमनाय च।

(गणपति-प्रसादं शिरसा गृहीत्वा)

॥ आसन-पूजा ॥

पृथिव्या मेरुपृष्ठ ऋषिः। सुतलं छन्दः। कूर्मो देवता॥

पृथिव्ये त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं चासनं कुरु॥

॥ घण्टा-पूजा ॥

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्।
घण्टारवं करोम्यादौ देवताऽऽह्नकारणम्॥

॥ कलश-पूजा ॥

ॐ कलशाय नमः दिव्यगन्धान् धारयामि।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

ॐ गङ्गायै नमः। ॐ यमुनायै नमः। ॐ गोदावर्यै नमः। ॐ सरस्वत्यै
नमः। ॐ नर्मदायै नमः। ॐ सिन्ध्ये नमः। ॐ कावेर्यै नमः।
ॐ सप्तकोटिमहातीर्थान्यावाहयामि।

(अथ कलशं स्पृष्टा जपं कुर्यात्)

आपो वा इदं सर्वं विश्वं भूतान्यापः प्राणा वा आपः पश्व
आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाऽङ्गस्यापो
ज्योतीऽङ्गस्यापो यजूऽङ्गस्यापः सूत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप
ओम्॥

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
 ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः।
 अङ्गेश्च सहिताः सर्वे कलशाम्बुसमाश्रिताः॥
 सर्वे समुद्राः सरितः तीर्थानि च हृदा नदाः।
 आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः॥
 ॐ भूर्भुवः सुवो भूर्भुवः सुवो भूर्भुवः सुवः।

(इति कलशजलेन सर्वोपकरणानि आत्मानं च प्रोक्ष्य।)

॥ आत्म-पूजा ॥

ॐ आत्मने नमः, दिव्यगन्धान् धारयामि।

- | | |
|----------------------|----------------------|
| १. ॐ आत्मने नमः | ४. ॐ जीवात्मने नमः |
| २. ॐ अन्तरात्मने नमः | ५. ॐ परमात्मने नमः |
| ३. ॐ योगात्मने नमः | ६. ॐ ज्ञानात्मने नमः |

समस्तोपचारान् समर्पयामि।

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।
 त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्॥

॥ पीठ-पूजा ॥

- | | |
|-----------------------|-------------------------|
| १. ॐ आधारशक्त्यै नमः | ८. ॐ रत्नवेदिकायै नमः |
| २. ॐ मूलप्रकृत्यै नमः | ९. ॐ स्वर्णस्तम्भाय नमः |
| ३. ॐ आदिकूर्माय नमः | १०. ॐ श्वेतच्छत्राय नमः |
| ४. ॐ आदिवराहाय नमः | ११. ॐ कल्पकवृक्षाय नमः |
| ५. ॐ अनन्ताय नमः | १२. ॐ क्षीरसमुद्राय नमः |
| ६. ॐ पृथिव्यै नमः | १३. ॐ सितचामराभ्यां नमः |
| ७. ॐ रत्नमण्डपाय नमः | १४. ॐ योगपीठासनाय नमः |

॥ गुरु-ध्यानम् ॥

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री-गुरवे नमः॥

॥ षोडशोपचार-पूजा ॥

एकाम्रनाथ-दयितां कामाक्षीं भुवनेश्वरीम्।
ध्यायामि हृदये देवीं वाञ्छितार्थप्रदायिनीम्॥
कामाक्षीं ध्यायामि।

सर्वमङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थदायिनि।
आवाहयामि कुम्भेऽस्मिन् मम माङ्गल्य-सिद्धये॥
कामाक्षीम् आवाहयामि।

कामाक्षि वरदे देवि काश्चनेन विनिर्मितम्।
भक्त्या दास्ये स्वीकुरुष्व वरदा भव चासनम्॥
कामाक्ष्यै नमः, आसनं समर्पयामि।

गङ्गादि-सर्व-तीर्थेभ्यः नदीभ्यश्च समाहृतम्।
पाद्यं सम्प्रददे देवि गृहाण त्वं शिवप्रिये॥
कामाक्ष्यै नमः, पाद्यं समर्पयामि।

कामाक्षि स्वर्ण-कलशोनाहृतं च मया शिवे।
मधुकैटभ-हत्रि त्वं ददाम्यर्घ्यं गृहाण भोः॥
कामाक्ष्यै नमः, अर्घ्यं समर्पयामि।

आचम्यतां महादेवि एलोशीर-सुवासितम्।
ददामि तीर्थममलं गृहीत्वा लोकरक्षके॥
कामाक्ष्यै नमः, आचमनीयं समर्पयामि।

मधुपर्कं मया देवि काश्चीपुर-निवासिनि।
स्वीकृत्य दयया देहि चिरं मह्यं तु मङ्गलम्॥
कामाक्ष्यै नमः, मधुपर्कं समर्पयामि।

पश्चामृतमिदं दिव्यं पश्चपातक-नाशनम्।
पश्चभूतात्मके देवि पाहि स्वीकृत्य शङ्खरि॥
कामाक्ष्यै नमः, पश्चामृत-स्नानं समर्पयामि।

स्नास्यतां पापनाशाय या प्रवृत्ता सुरापगा।
मयाऽर्पिता त्वं गृह्णीष्व प्रीता भव दयानिधे॥
कामाक्ष्यै नमः, स्नानं समर्पयामि।

दुकूलान्यम्बराणीह वस्त्राणि विविधानि च।
ददामि हरदेवीशि विद्याधिष्ठान-पीठिके॥
कामाक्ष्यै नमः, वस्त्रं समर्पयामि।

उपवीतं मया प्रीत्यै काश्चनेन विनिर्मितम्।
गृहीत्वा तव मे भक्तिं प्रयच्छ करुणानिधे॥
कामाक्ष्यै नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

गन्धं सुवासितं रत्नं कुङ्कुमान्वितम् अम्बिके।
गङ्गानुजे देहि मह्यं दीर्घमङ्गल-सूत्रकम्॥
कामाक्ष्यै नमः, गन्धान् धारयामि। हरिद्राकुङ्कुमं समर्पयामि।

कार्पास-सूत्रं दास्यामि सुवर्णमणि-संयुतम्।
भूषणार्थं मयाऽनीतं देहि मे वरमुत्तमम्॥

कामाक्ष्यै नमः, मङ्गलसूत्रं समर्पयामि।

जातीचम्पक-पुन्नाग-केतकी-वकुलानि च।
मयाऽर्पितानि सुभगे गृहाण जननि मम॥

कामाक्ष्यै नमः, पुष्पाणि समर्पयामि।

अङ्ग-पूजा

- | | | |
|-----|------------------------|------------------|
| १. | कामाक्ष्यै नमः | — पादौ पूजयामि |
| २. | कल्मषघ्न्यै नमः | — गुल्फौ पूजयामि |
| ३. | विद्याप्रदायिन्यै नमः | — जङ्घे पूजयामि |
| ४. | करुणामृत-सागरायै नमः | — जानुनी पूजयामि |
| ५. | वरदायै नमः | — ऊरु पूजयामि |
| ६. | काश्मीनगर-वासिन्यै नमः | — कटिं पूजयामि |
| ७. | कन्दर्प-जनन्यै नमः | — नाभिं पूजयामि |
| ८. | पुरमथन-पुण्यकोट्यै नमः | — वक्षः पूजयामि |
| ९. | महाज्ञान-दायिन्यै नमः | — स्तनौ पूजयामि |
| १०. | लोकमात्रे नमः | — कण्ठं पूजयामि |
| ११. | मायायै नमः | — नेत्रे पूजयामि |
| १२. | मधुरवेणी-सहोदर्यै नमः | — ललाटं पूजयामि |
| १३. | एकाम्र-नाथायै नमः | — कण्ठौ पूजयामि |
| १४. | कामकोटि-निलयायै नमः | — शिरः पूजयामि |
| १५. | कामेश्वर्यै नमः | — चिकुरं पूजयामि |

१६. कामितार्थ-दायिन्यै नमः — धम्मिलं पूजयामि
 १७. कामाक्ष्यै नमः — सर्वाण्यङ्गानि पूजयामि

॥ कामाक्ष्यष्टोत्तरशतनामावलिः ॥

| | | |
|--------------------------|-----------------------------------|----|
| कालकण्ठै नमः | सर्वरोगहराधीशायै नमः | २० |
| त्रिपुरायै नमः | सर्वसिद्धिप्रदाधिपायै नमः | |
| बालायै नमः | सर्वानन्दमयाधीशायै नमः | |
| मायायै नमः | योगिनीचक्रनायिकायै नमः | |
| त्रिपुरसुन्दर्यै नमः | भक्तानुरक्तायै नमः | |
| सुन्दर्यै नमः | रक्ताङ्गै नमः | |
| सौभाग्यवत्यै नमः | शङ्करार्धशरीरिण्यै नमः | |
| क्लीङ्कार्यै नमः | पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशकरायै | |
| सर्वमङ्गलायै नमः | नमः | |
| ऐङ्गार्यै नमः | उज्वलायै नमः | |
| स्कन्दजनन्यै नमः | सच्चिदानन्दलहर्यै नमः | |
| परायै नमः | श्रीविद्यायै नमः | ३० |
| पञ्चदशाक्षर्यै नमः | परमेश्वर्यै नमः | |
| त्रैलोक्यमोहनाधीशायै नमः | अनङ्गकुसुमोद्यानायै नमः | |
| सर्वाशापूरवलभायै नमः | चक्रेश्वर्यै नमः | |
| सर्वसङ्घोभणाधीशायै नमः | भुवनेश्वर्यै नमः | |
| सर्वसौभाग्यवल्लभायै नमः | गुप्तायै नमः | |
| सर्वार्थसाधकाधीशायै नमः | गुप्ततरायै नमः | |
| सर्वरक्षाकराधिपायै नमः | नित्यायै नमः | |

| | | |
|--------------------------|----|-----------------------------|
| नित्यक्लिन्नायै नमः | | सर्वमातृकायै नमः |
| मदद्रवायै नमः | | विष्णुस्वसे नमः |
| मोहिन्यै नमः | ४० | वेदमय्यै नमः |
| परमानन्दायै नमः | | सर्वसम्पत्प्रदायिन्यै नमः |
| कामेश्यै नमः | | किङ्करीभूतगीर्वाण्यै नमः |
| तरुणीकलायै नमः | | सुतवापिविनोदिन्यै नमः |
| श्रीकलावत्यै नमः | | मणिपूरसमासीनायै नमः |
| भगवत्यै नमः | | अनाहताभवासिन्यै नमः |
| पद्मरागकिरीटायै नमः | | विशुद्धिचक्रनिलयायै नमः |
| रक्तवस्त्रायै नमः | | आज्ञापद्मनिवासिन्यै नमः |
| रक्तभूषायै नमः | | अष्टत्रिंशत्कलामूर्त्यै नमः |
| रक्तगन्धानुलेपनायै नमः | | सुषुम्नाद्वारमध्यकायै नमः |
| सौगन्धिकलसद्वेण्यै नमः | ५० | योगीश्वरमनोध्येयायै नमः |
| मत्रिण्यै नमः | | परब्रह्मस्वरूपिण्यै नमः |
| तत्ररूपिण्यै नमः | | चतुर्भुजायै नमः |
| तत्वमय्यै नमः | | चन्द्रचूडायै नमः |
| सिद्धान्तपुरवासिन्यै नमः | | पुराणागमरूपिण्यै नमः |
| श्रीमत्यै नमः | | ओङ्कार्यै नमः |
| चिन्मय्यै नमः | | विमलायै नमः |
| देव्यै नमः | | विद्यायै नमः |
| कौलिन्यै नमः | | पञ्चप्रणवरूपिण्यै नमः |
| परदेवतायै नमः | ६० | भूतेश्वर्यै नमः |
| कैवल्यरेखायै नमः | | भूतमय्यै नमः |
| वशिन्यै नमः | | पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै नमः |
| सर्वेश्वर्यै नमः | | षोडान्यासमहारूपिण्यै नमः |

| | | |
|-------------------------|----|-----------------------------|
| कामाक्ष्यै नमः | | दशारद्वयवासिन्यै नमः |
| दशमातृकायै नमः | | चतुर्दशारचक्रस्थायै नमः १०० |
| आधारशक्त्यै नमः | १० | वसुपद्मनिवासिन्यै नमः |
| अरुणायै नमः | | स्वराजपत्रनिलयायै नमः |
| लक्ष्म्यै नमः | | वृत्तत्रयवासिन्यै नमः |
| त्रिपुरभैरव्यै नमः | | चतुरस्त्वरूपास्यायै नमः |
| रहःपूजासमालोलायै नमः | | नवचक्रस्वरूपिण्यै नमः |
| रहोयत्रस्वरूपिण्यै नमः | | महानित्यायै नमः |
| त्रिकोणमध्यनिलयायै नमः | | विजयायै नमः |
| बिन्दुमण्डलवासिन्यै नमः | | श्रीराजराजेश्वर्यै नमः १०८ |
| वसुकोणपुरावासायै नमः | | |

॥इति श्री-कामाक्ष्यष्टोत्तरशतनामावलिः सम्पूर्णा॥

॥उत्तराङ्ग-पूजा ॥

एकाम्रनाथ-दयिते काश्मीरु-निवासिनि।
धूपं गृहाण देवि त्वं सर्वार्भीष्ट-प्रदायिनि॥

कामाक्ष्यै नमः, धूपम् आग्रापयामि।

घृतवर्ति-समायुक्तं सर्वलोक-प्रकाशकम्।
दीपं गृह्णीष्व सुभगे वाञ्छितार्थ-प्रदायिनि॥

कामाक्ष्यै नमः, दीपं सन्दर्शयामि।

गुडापूपत्रयं देवि साढकं प्रददाम्यहम्।
नवनीतयुतं देवि मोदकापूपसंयुतम्॥

पायसं सघृतं दद्यां सफलं लङ्घुकान्वितम्।
मम भर्तुस्सदा देवि गृहीत्वा प्रौतिदा भव॥

कामाक्ष्ये नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।

पूर्णीफल-समायुक्तं नागवल्लिदलैर्युतम्।
कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

कामाक्ष्ये नमः, कर्पूरताम्बूलं निवेदयामि।

कर्पूरदीपं सुभगे सर्वमङ्गल-वर्धनम्।
सर्वव्याधिहरं देवि गृह्यताम् अम्बिके शिवे॥

कामाक्ष्ये नमः, मम दीर्घसौमाङ्गल्यता-सिद्धर्थं कर्पूर-नीराञ्जनं सन्दर्शयामि।

कान्ता कामदुधा करीन्द्रगमना कामारिवामाङ्गगा
कल्याणी कलितावतारसुभगा कस्तूरिकाचर्चिता।
कम्पातीररसालमूलनिलया कारुण्यकलोलिनी
कल्याणानि करोतु मे भगवती काश्चीपुरीदेवता॥

मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे।
मङ्गलाढ्ये मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे॥

नमो देव्ये महादेव्ये लोकमात्रे नमो नमः।
शिवायै शिवरूपिण्यै भक्ताभीष्टप्रदा भव॥

कामाक्षि काश्चिनिलये मम माङ्गल्यवृद्धये।
नमस्करोमि देवेशि मह्यं कुरु दयां शिवे॥

कामाक्ष्ये नमः, अनन्तकोटि-प्रदक्षिण-नमस्कारान् समर्पयामि।

कामाक्षी स्वरूपस्य ब्राह्मणस्य इदमासनम् — सकलाराधनैः स्वर्चितम्।

कामाक्षी काम-वृद्ध्यर्थं मम माङ्गल्य-सिद्धये।
उपायनं प्रदास्यामि ददामोघं वरं मम॥

इदं हिरण्यं सदक्षिणाकं सताम्बूलं कामाक्षी-स्वरूपाय ब्राह्मणाय सम्प्रददे
न मम॥

॥दोर-बन्धनम्॥

दोरं गृह्णामि सुभगे सहारिद्रं धराम्यहम्।
भर्तुरायुष्य-सिद्ध्यर्थं सुप्रीता भव सर्वदा॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि॥



॥श्री-कामाक्षी-चूर्णिका॥

श्री-चन्द्र-मौलीश्वराय नमः। श्री-कामाक्षी-देव्यै नमः।

जय जय श्री-काम-गिरीन्द्र-निलये!

जय जय श्री-कामकोटि-पीठ-स्थिते!

जय जय श्री-त्रिचत्वारिंशत्-कोण-श्रीचक्रान्तराल-बिन्दु-पीठोपरि-लसत्-पञ्च-
ब्रह्म-मय-मञ्च-मध्य-स्थ-श्री-शिव-कामेश-वामाङ्ग-निलये!

जय जय श्री-विधि-हरि-हर-सुर-गण-वन्दित-चरणारविन्द-युगले!

जय जय श्री-रमा-वाणी-न्द्राणी-प्रमुख-रमणी-कर-कमल-समर्पित-चरण-
कमले!

जय जय श्री-निखिल-निगमागम-सकल-संवेद्यमान-विविध-वस्त्रालङ्कृत-हेम-
निर्मित-अनर्घ-भूषण-भूषित-दिव्य-मूर्ते!

जय जय श्रीमद्-अनवरताभिषेक-धूप-दीप-नैवेद्यादि-नाना-विधोपचारे:
परिशोभिते!

जय जय श्री-काश्मी-नगर्या द्वात्रिंशद्-धर्म-प्रतिपादनार्थ-स्थापित-हेम-
खजालङ्कृते!

जय जय श्री-सकल-मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-मय-परा-बिलाकाश-स्वरूपे!

जय जय श्री-काश्मी-नगर्या कामाक्षीति प्रख्यात-नामाङ्किते!

जय जय श्री-महात्रिपुरसुन्दरि बहु पराक्!

॥ अपराध-क्षमापनम् ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपः-पूजा-क्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
 बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
 करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
 नारायणायेति समर्पयामि॥
 सर्वं तत्सद्व्याप्तिर्णमस्तु।



॥ पतिव्रतामाहात्म्यपर्व ॥

॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

॥ चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ ॥

युधिष्ठिर उवाच

नाऽऽत्मानमनुशोचामि नेमान्नातृन्महामुने।
हरणं चापि राज्यस्य यथेमां द्रुपदात्मजाम् ॥१॥

दूते दुरात्मभिः क्लिष्टाः कृष्णाया तारिता वयम्।
जयद्रथेन च पुनर्वनाच्चापि हृता बलात् ॥२॥

अस्ति सीमन्तिनी काचिद्दृष्टपूर्वाऽपि वा श्रुता।
पतिव्रता महाभागा यथेयं द्रुपदात्मजा ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर।
सर्वमैत्र्यथाप्रातं सावित्र्या राजकन्यया ॥४॥

आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः।
ब्रह्मण्यश्च महात्मा च सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५॥

यज्वा दानपतिर्दक्षः पौरजानपदप्रियः।
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम सर्वभूतहिते रतः ॥६॥

क्षमावाननपत्यश्च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः।
अतिक्रान्तेन वयसा सन्तापमुपजग्मिवान् ॥७॥

अपत्योत्पादनार्थं च तीव्रं नियममास्थितः।
काले परिमिताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥८॥

हुत्वा शतसहस्रं स सावित्रा राजसत्तमा।
षष्ठेषष्ठे तदाकाले बभूव मितभोजनः॥१॥

एतेन नियमेनासीद्वर्षाण्यष्टादशैव तु।
पूर्णे त्वष्टादशे वर्षे सावित्री तुष्टिमध्यगात्॥१०॥

रूपिणी तु तदा राजन्दर्शयामास तं नृपम्।
अग्निहोत्रात्समुत्थाय हर्षेण महताऽन्विता॥११॥

उवाच चैनं वरदा वचनं पार्थिवं तदा।
सा तमश्वपतिं राजन्सावित्री नियमे स्थितम्॥१२॥

ब्रह्मचर्येण शुद्धेन दमेन नियमेन च।
सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टाऽस्मि तव पार्थिव॥१३॥

वरं वृणीष्वाश्वपते मद्राज यदीप्सितम्।
न प्रमादश्च धर्मेषु कर्तव्यस्ते कथश्चन॥१४॥

अश्वपतिरुवाच

अपत्यार्थः समारम्भः कृतो धर्मेष्यस्या मया।
पुत्रा मे बहवो देवि भवेयुः कुलभावनाः॥१५॥

तुष्टाऽसि यदि मे देवि वरमेतं वृणोम्यहम्।
सन्तानं परमो धर्म इत्याहुर्मा द्विजातयः॥१६॥

सावित्र्युवाच

पूर्वमेव मया राजन्नभिप्रायमिमं तव।
ज्ञात्वा पुत्रार्थमुक्तो वै भगवांस्ते पितामहः॥१७॥

प्रसादाच्चैव तस्मात्ते स्वयं विहितवत्यहम्।
कन्या तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति॥१८॥

उत्तरं च न ते किञ्चिद्व्याहृत्यव्यं कथश्चन।
पितामहनियोगेन तुष्टा ह्येतद्वीर्मि ते॥१९॥

स तथेति प्रतिज्ञाय सावित्र्या वचनं नृपः।
प्रसादयामास पुनः क्षिप्रमेतद्विष्यति॥२०॥

अन्तर्हितायां सावित्र्यां जगाम स्वपुरं नृपः।
स्वराज्ये चावसद्वीरः प्रजा धर्मेण पालयन्॥२१॥

कस्मिंश्चित् गते काले स राजा नियतत्रतः।
ज्येष्ठायां धर्मचारिण्यां महिष्यां गर्भमादधे॥२२॥

राजपुत्रास्तु गर्भः स मानव्या भरतर्षभा।
व्यवर्धत तदा शुक्ले तारापतिरिवाम्बरे॥२३॥

प्राप्ते काले तु सुषुवे कन्यां राजीवलोचनाम्।
क्रियाश्च तस्या मुदितश्चक्रे च नृपसत्तमः॥२४॥

सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्या हुतया ह्यपि।
सावित्रीत्येव नामास्याश्चकुर्विप्रास्तथा पिता॥२५॥

सा विग्रहवतीव श्रीर्व्यवर्धत नृपात्मजा।
कालेन चापि सा कन्या यौवनस्ता बभूव ह॥२६॥

तां सुमध्यां पृथुश्रोणीं प्रतिमां काश्चनीमिव।
प्राप्तेयं देवकन्येति दृष्ट्वा सम्मेनिरे जनाः॥२७॥

तां तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा।
न कश्चिद्वरयामास तेजसा प्रतिवारितः॥२८॥

अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य सा।
हुत्वाऽग्निं विधिवद्विप्रान्वाचयामास पर्वणि॥२९॥

ततः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य महात्मनः।
पितुः समीपमगमद्वेवी श्रीरिव रूपिणी॥३०॥

साऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषाः पूर्वं निवेद्य च।
कृताञ्जलिर्वरगरोहा नृपतेः पार्श्वमास्थिता॥३१॥

यौवनस्थां तु तां द्वच्छा स्वां सुतां देवरूपिणीम्।
अयाच्यमानां च वरैर्नृपतिर्दुःखितोऽभवत्॥३२॥

राजोवाच

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम्।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः॥३३॥

प्रार्थितः पुरुषो यश्च स निवेद्यस्त्वया मम।
विमृश्याहं प्रदास्यामि वरय त्वं यथोप्सितम्॥३४॥

श्रुतं हि धर्मशास्त्रेषु पठ्यमानं द्विजातिभिः।
तथा त्वमपि कल्याणि गदतो मे वचः शृणु॥३५॥

अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्ति:।
मृते पितरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता॥३६॥

इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे त्वरा।
देवतानां यथा याच्यो न भवेयं तथा कुरु॥३७॥

एवमुक्ता दुहितरं तथा वृद्धांश्च मन्त्रिणः।
व्यादिदेशानुयात्रं च गम्यतां चेत्यचोदयत्॥३८॥

साऽभिवाद्य पितुः पादौ ब्रीडितेव मनस्विनो।
पितुर्वचनमाज्ञाय निर्जगामाविचारितम्॥३९॥

सा हैमं रथमास्थाय स्थविरैः सचिवैर्वृता।
तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम ह॥४०॥

मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादभिवादनम्।
वनानि क्रमशस्तात् सर्वाण्येवाभ्यगच्छत्॥४१॥

एवं तीर्थेषु सर्वेषु धनोत्सर्गं नृपात्मजा।
कुर्वती द्विजमुख्यानां तं तं देशं जगाम ह॥४२॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतित्रामाहात्म्यपर्वणि
चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९४॥

॥पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९५॥॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ मद्राधिपो राजा नारदेन समागतः।
उपविष्टः सभामध्ये कथायोगेन भारत॥४३॥

ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमांस्तथा।
आजगाम पितुर्वेशम् सावित्री सह मन्त्रिभिः॥४४॥

नारदेन सहासीनं सा दृष्ट्वा पितरं शुभा।
उभयोरेव शिरसा चक्रे पादभिवादनम्॥४५॥

नारद उवाच

क्व गताऽभूत्सुतेयं ते कुतश्चैवाऽऽगता नृपा।
किमर्थं युवतीं भद्रं न चैनां सम्प्रयच्छसि॥४६॥

अश्वपतिरुवाच

कार्येण खल्वनेनैव प्रेषिताद् यैव चाऽऽगता।
एतस्याः शृणु देवर्षे भर्तारं योऽनया वृतः॥४७॥

मार्कण्डेय उवाच

सा ब्रूहि विस्तरेणेति पित्रा सशोदिता शुभा।
तदैव तस्य वचनं प्रतिगृह्येदमब्रवीत्॥४८॥

आसीत्साल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः।
द्युमत्सेन इति ख्यातः पश्चाच्चान्यो बभूव ह॥४९॥

विनष्टचक्षुषस्तस्य बालपुत्रस्य धीमतः।
सामीप्येन हृतं राज्यं छिद्रेऽस्मिन्पूर्ववैरिणा॥५०॥

स बालवत्सया सार्धं भार्यया प्रस्थितो वनम्।
महारण्यं गतश्चापि तपस्तेषे महाव्रतः॥५१॥

तस्य पुत्रः पुरे जातः संबृद्धश्च तपोवने।
सत्यवाननुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः॥५२॥

नारद उवाच

अहो बत महत्पापं सावित्र्या नृपते कृतम्।
अजानन्त्या यदनया गुणवान्सत्यवान्वृतः॥५३॥

सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते।
तथाऽस्य ब्राह्मणाश्रकुर्नामैतत्सत्यवानिति॥५४॥

बालस्याश्वाः प्रियाश्वास्य करोत्यश्वांश्च मृम्यान्।
चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इति चोच्यते॥५५॥

राजोवाच

अपीदार्नीं स तेजस्वी बुद्धिमान्वा नुपात्मजः।
क्षमावानपि वा शूरः सत्यवान्प्रितृवत्सलः॥५६॥

नारद उवाच

विवस्वानिव तेजस्वी बृहस्पतिसमो मतौ।
महेन्द्र इव वीरश्च वसुधेव क्षमान्वितः॥५७॥

अश्वपतिरुवाच

अपि राजात्मजो दाता ब्रह्मण्यश्चापि सत्यवान्।
रूपवानप्युदारो वाऽप्यथवा प्रियदर्शनः॥५८॥

नारद उवाच

साङ्कृंते रन्तिदेवस्य स्वशत्त्या दानतः समः।
 ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शिबिरौशीनरो यथा॥५९॥

ययातिरिव चोदारः सोमवत्प्रियदर्शनः।
 रूपेणान्यतमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली॥६०॥

स वदान्यः स तेजस्वी धीमांश्वैव क्षमान्वितः।
 स दान्तः स मृदुः शूरः स सत्यः संयतेन्द्रियः।
 सन्मैत्रः सोऽनसूयश्च स हीमान्द्युतिमांश्च सः॥६१॥

नित्यशक्षार्जवं तस्मिन्द्युतिस्तत्रैव च ध्रुवा।
 सङ्घेपतस्तपोवृद्धैः शीलवृद्धैश्च कथ्यते॥६२॥

अश्वपतिरुवाच

गुणेरुपेतं सर्वेस्तं भगवन्प्रब्रवीषि मे।
 दोषानप्यस्य मे ब्रूहि यदि सन्तीह केचन॥६३॥

नारद उवाच

एक एवास्य दोषो हि गुणानाक्रम्य तिष्ठति।
 स च दोषः प्रयत्नेन न शक्यमतिवर्तितुम्॥६४॥

एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवान्।
 संवत्सरेण क्षीणायुर्देहन्यासं करिष्यति॥६५॥

राजोवाच

एहि सावित्रि गच्छस्व अन्यं वरय शोभने।
 तस्य दोषो महानेको गुणानाक्रम्य च स्थितः॥६६॥

यथा मे भगवानाह नारदो देवसत्कृतः।
 संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहन्यासं करिष्यति॥६७॥

सावित्र्युवाच

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
 सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥६८॥

दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
 सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥६९॥

मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते।
 क्रियते कर्मणा पश्चात्रमाणं मे मनस्ततः॥७०॥

नारद उवाच

स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्या दुहितुस्तव।
 नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात्कथश्चन॥७१॥

नान्यस्मिन्पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः।
 प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव॥७२॥

राजोवाच

अविचाल्यमेतदुक्तं तथ्यं च भवता वचः।
 करिष्याम्येतदेवं च गुरुर्हि भगवान्मम॥७३॥

नारद उवाच

अविघ्रमस्तु सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव।
 साधयिष्याम्यहं तावत्सर्वेषां भद्रमस्तु वः॥७४॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्ता खवमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः।
 राजाऽपि दुहितुः सञ्जं वैवाहिकमकारयत्॥७५॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि
 पश्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९५॥

॥ षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ कन्याप्रदाने स तमेवार्थं विचिन्तयन्।
समानित्ये च तत्सर्वं भाण्डं वैवाहिकं नृपः॥७६॥

ततो वृद्धान्द्विजान्सर्वानृत्विक्सभ्यपुरोहितान्।
समाहूय दिने पुण्ये प्रययौ सह कन्यया॥७७॥

मेध्यारण्यं स गत्वा च द्युमत्सेनाश्रमं नृपः।
पञ्चामेव द्विजैः सार्धं राजर्षिं तमुपागमत्॥७८॥

तत्रापश्यन्महाभागं सालवृक्षमुपाश्रितम्।
कौश्यां बृस्यां समासीनं चक्षुर्हीनं नृपं तदा॥७९॥

स राजा तस्य राजर्षेः कृत्वा पूजां यथाऽर्हतः।
वाचा सुनियतो भूत्वा चकाराऽत्मनिवेदनम्॥८०॥

तस्यार्घ्यमासनं चैव गां चाऽवेद्य स धर्मवित्।
किमागमनमित्येवं राजा राजानमब्रवीत्॥८१॥

तस्य सर्वमभिप्रायमितिकर्तव्यतां च ताम्।
सत्यवन्तं समुद्दिश्य सर्वमेव न्यवेदयत्॥८२॥

सावित्री नाम राजर्षे कन्येयं मम शोभना।
तां स्वधर्मेण धर्मज्ञं सुषार्थं त्वं गृहाण मे॥८३॥

द्युमत्सेन उवाच

च्युताः स्म राज्याद्वनवासमाश्रिताश्-
चराम धर्मं नियतास्तपस्विनः।
कथं त्वनर्हा वनवासमाश्रमे
सहिष्यति क्लेशमिमं सुता तव॥८४॥

अश्वमतिरुवाच

सुखं च दुःखं च भवाभवात्मकं
 यदा विजानाति सुताऽहमेव च।
 न मद्विधे युज्यते वाक्यमीदृशं
 विनिश्चयेनाभिगतोऽस्मि ते नृप॥८५॥

आशां नाहसि मे हन्तुं सौहृदात्मणतस्य च।
 अभितश्चागतं प्रेम्णा प्रत्याख्यातुं न माऽर्हसि॥८६॥

अनुरूपो हि युक्तश्च त्वं ममाहं तवापि च।
 स्नुषां प्रतीच्छ मे कन्यां भार्या सत्यवतस्ततः॥८७॥

द्युमत्सेन उवाच

पूर्वमेवाभिलषितः सम्बन्धो मे त्वया सह।
 भ्रष्टराज्यस्त्वहमिति तत एतद्विचारितम्॥८८॥

अभिप्रायस्त्वयं यो मे पूर्वमेवाभिकाङ्क्षितः।
 स निर्वर्ततु मेऽद्यैव काङ्क्षितो ह्यसि मेऽतिथिः॥८९॥

ततः सर्वान्समानाय्य द्विजानाश्रमवासिनः।
 यथाविधि समुद्घाहं कारयामासतुर्नृपौ॥९०॥

दत्त्वा सोऽश्वपतिः कन्यां यथार्हं सपरिच्छदम्।
 ययौ स्वमेव भवनं युक्तः परमया मुदा॥९१॥

सत्यवानपि तां भार्या लब्ध्वा सर्वगुणान्विताम्।
 मुमुदे सा च तं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम्॥९२॥

गते पितरि सर्वाणि सञ्चस्याऽभरणानि सा।
 जगृहे वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च॥९३॥

परिचारैर्गुणैश्चैव प्रश्रयेण दमेन च।
 सर्वकामक्रियाभिश्च सर्वेषां तुष्टिमादधे॥९४॥

श्वशूं शरीरसत्कारैः सर्वैराच्छादनादिभिः।
श्वशुरं देवसत्कारैर्वाचः संयमनेन च॥१५॥

तथैव प्रियवादेन नैषुणेन शमेन च।
रहश्चौपचारेण भर्तारं पर्यतोषयत्॥१६॥

एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सताम्।
कालस्तपस्यतां कश्चिदपाक्रामत भारत॥१७॥

सावित्रा ग्लायमानायास्तिष्ठन्त्यास्तु दिवानिशम्।
नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते॥१८॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि
षण्वत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९६॥

॥सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९७॥ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन।
प्राप्तः स कालो मर्तव्यं यत्र सत्यवता नृप॥९९॥

गणयन्त्याश्च सावित्रा दिवसदिवसे गते।
यद्वाक्यं नारदेनोक्तं वर्तते हृदि नित्यशः॥१००॥

चतुर्थऽहनि मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य भामिनी।
ब्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिताऽभवत्॥१०१॥

त्रयोदश्यां चोपवासं प्रतिपत्सु च पारणम्।
आयुष्यं वर्धते भर्तुर्ब्रतेनानेन भारत॥१०२॥

तं श्रुत्वा नियमं तस्या भृशं दुःखान्वितो नृपः।
उत्थाय वाक्यं सावित्रीमब्रवीत्परिसान्त्वयन्॥१०३॥

अतितीव्रोऽयमारम्भस्त्वयाऽऽरब्धो नृपात्मजे।
तिसृणां वसतीनां हि स्थानं परमदुश्शरम्॥१०४॥

सावित्र्युवाच

न कार्यस्तात् सन्तापः पारयिष्याम्यहं व्रतम्।
व्यवसायकृतं हीदं व्यवसायश्च कारणम्॥१०५॥

द्युमत्सेन उवाच

व्रतं भिन्नीति वक्तुं त्वां नास्मि शक्तः कथश्चन।
पारयस्वेति वचनं युक्तमस्मद्विधो वदेत्॥१०६॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्ता द्युमत्सेनो विरराम महामनाः।
तिष्ठन्ती चैव सावित्री काण्ठभूतेव लक्ष्यते॥१०७॥

श्वोभूते भर्तृमरणे सावित्रा भरतर्षभा।
दुःखान्वितायास्तिष्ठन्त्याः सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत॥१०८॥

अद्य तद्विवसं चेति हुत्वा दीपं हुताशनम्।
युगमात्रोदिते सूर्ये कृत्वा पौर्वाह्लिकीः क्रियाः॥१०९॥

व्रतं समाप्य सावित्री स्नात्वा शुद्धा यशस्विनी।
ततः सर्वान्द्विजान्वृद्धाऽश्वश्रूं श्वशुरमेव च।
अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्नियता स्थिता॥११०॥

अवैधव्याशिषस्ते तु सावित्र्यर्थं हिताः शुभाः।
ऊचुस्तपस्विनः सर्वे तपोवननिवासिनः॥१११॥

एवमस्त्विति सावित्री ध्यानयोगपरायणा।
मनसा ता गिरः सर्वाः प्रत्यगृह्णात्पस्विनी॥११२॥

तं कालं तं मुहूर्तं च प्रतीक्षन्ती नृपात्मजा।
यथोक्तं नारदवचश्चिन्तयन्ती सुदुःखिता॥११३॥

ततस्तु श्वशूश्वशुरावूचतुस्तां नृपात्मजाम्।
एकान्तमास्थितां वाक्यं प्रीत्या भरतसत्तम॥११४॥

ब्रतं यथोपदिष्टं तु तथा तत्पारितं त्वया।
आहारकालः सम्प्राप्तः क्रियतां यदनन्तरम्॥११५॥

सावित्र्युवाच

अस्तं गते मयाऽऽदित्ये भोक्तव्यं कृतकामया।
एष मे हृदि सङ्कल्पः समयश्च कृतो मया॥११६॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सम्भाषमाणायाः सावित्र्या भोजनं प्रति।
स्कन्दे परशुमादाय सत्यवान्प्रस्थितो वनम्॥११७॥

सावित्री त्वाह भर्तारं नैकस्त्वं गन्तुमर्हसि।
सह त्वया गमिष्यामि न हित्वां हातुमुत्सहे॥११८॥

सत्यवानुवाच

वनं न गतपूर्वं ते दुःखः पन्थाश्च भामिनि।
ब्रतोपवासक्षामा च कथं पञ्चां गमिष्यसि॥११९॥

सावित्र्युवाच

उपवासान्न मे ग्लानिर्नास्ति चापि परिश्रमः।
गमने च कृतोत्साहां प्रतिषेद्धुं न माऽर्हसि॥१२०॥

सत्यवानुवाच

यदि ते गमनोत्साहः करिष्यामि तव प्रियम्।
मम त्वामन्त्रय गुरुन्न मां दोषः स्पृशेदयम्॥१२१॥

मार्कण्डेय उवाच

साऽभिवाद्याब्रवीच्छश्रूं श्वशुरं च महाब्रता।
अयं गच्छति मे भर्ता फलाहारो महावनम्॥१२२॥

इच्छेयमभ्यनुज्ञाता आर्यया श्वशुरेण ह।
अनेन सह निर्गन्तुं न मेऽद्य विरहः क्षमः॥१२३॥

गुर्वग्निहोत्रार्थकृते प्रस्थितश्च सुतस्तव।
न निवार्यो निवार्यः स्यादन्यथा प्रस्थितो वनम्॥१२४॥

संवत्सरः किञ्चिद्दूनो न निष्क्रान्ताऽहमाश्रमात्।
वनं कुसुमितं द्रष्टुं परं कौतूहलं हि मे॥१२५॥

द्युमत्सेन उवाच

यदा प्रभृति सावित्री पित्रा दत्ता सुषा मम।
नानयाऽभ्यर्थनायुक्तमुक्तपूर्वं स्मराम्यहम्॥१२६॥

तदेषा लभतां कामं यथाभिलषितं वधूः।
अप्रमादश्च कर्तव्यः पुत्रि सत्यवतः पर्थि॥१२७॥

मार्कण्डेय उवाच

उभाभ्यामभ्यनुज्ञाता सा जगाम यशस्विनी।
सहभर्त्रा हसन्तीव हृदयेन विदूयता॥१२८॥

सा वनानि विचित्राणि रमणीयानि सर्वशः।
मयूरगणजुष्टानि दर्दर्श विपुलेक्षणा॥१२९॥

नदीः पुण्यवहाश्वैव पुष्पितांश्च नगोत्तमान्।
सत्यवानाह पश्येति सावित्रीं मधुरं वचः॥१३०॥

निरीक्षमाणा भर्तारं सर्वावस्थमनिन्दिता।
मृतमेव हि तं मेने काले मुनिवचः स्मरन्॥१३१॥

अनुव्रजन्ती भर्तारं जगाम मृदुगामिनी।
द्विधेव हृदयं कृत्वा तं च कालमवेक्षती॥१३२॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतित्रतामाहात्म्यपर्वणि
सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९७॥

॥ अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ भार्यासहायः स फलान्यादाय वीर्यवान्।
कठिनं पूरयामास ततः काण्ठान्यपाटयत्॥१३३॥

तस्य पाटयतः काष्ठं स्वेदो वै समजायत।
व्यायामेन च तेनास्य जज्ञे शिरसि वेदना॥१३४॥

सोऽभिगम्य प्रियां भार्यामुवाच श्रमपीडितः।
व्यायामेन ममानेन जाता शिरसि वेदना॥१३५॥

अङ्गानि चैव सावित्रि हृदयं दूयतीव च।
अस्वस्थमिव चाऽत्मानं लक्षये मितभाषिणि॥१३६॥

शूलैरिव शिरो विछमिदं संलक्ष्याम्यहम्।
भ्रमन्तीव दिशः सर्वाश्वकारूढं मनो मम।
तत्स्वसुमिच्छे कल्याणि न स्थातुं शक्तिरस्ति मे॥१३७॥

सा समासाद्य सावित्री भर्तारमुपगम्य च।
उत्सङ्घेऽस्य शिरः कृत्वा निषसाद महीतले॥१३८॥

ततः सा नारदवचो विमृशन्ती तपस्विनी।
तं मुहूर्तं क्षणं वेलां दिवसं च युयोज ह॥१३९॥

हन्त प्राप्तः स कालोऽयमिति चिन्तापरा सती।
मुहूर्तदिव चापश्यत् पुरुषं रक्तवाससम्।
बछमौलि वपुष्मन्तमादित्यसमतेजसम्॥१४०॥

श्यामावदातं रक्ताक्षं पाशहस्तं भयावहम्।
स्थितं सत्यवतः पार्श्वे निरीक्षन्तं तमेव च॥१४१॥

तं दृष्टा सहसोत्थाय भर्तुर्न्यस्य शनैः शिरः।
कृताञ्जलिरुवाचाऽर्ता हृदयेन प्रवेपती॥१४२॥

दैवतं त्वाभिजानामि वपुरेतद्यमानुषम्।
कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किं च चिकीर्षसि॥१४३॥

यम उवाच

पतित्रताऽसि सावित्रि तथैव च तपोन्विता।
अतस्त्वामभिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभे यमम्॥१४४॥

अयं ते सत्यवान्भर्ता क्षीणायुः पार्थिवात्मजः।
नेष्यामि तमहं बद्धा विद्धेतन्मे चिकीर्षितम्॥१४५॥

सावित्र्युवाच

श्रूयते भगवन्दूतास्तवागच्छन्ति मानवान्।
नेतुं किल भवान्कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो॥१४६॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान्स्वचिकीर्षितम्।
यथावत्सर्वमाख्यातुं तत्प्रियार्थं प्रचक्रमेष्व॥१४७॥

अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान्नुणसागरः।
नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः॥१४८॥

ततः सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशङ्गतम्।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्॥१४९॥

ततः समुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम्।
निर्विचेष्टं शरीरं तद्वभूवाप्रियदर्शनम्॥१५०॥

यमस्तु तं ततो बद्धा प्रयातो दक्षिणामुखः।
सावित्री चैव दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत॥१५१॥

भर्तुः शरीररक्षां च विधाय हि तपस्विनी।
भर्तारमनुगच्छन्ती तथावस्थं सुमध्यमा।
नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतित्रता॥१५२॥

यम उवाच

निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदैहिकम्।
कृतं भर्तुस्त्वयाऽऽनृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया॥१५३॥

सावित्र्युवाच

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥१५४॥

तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद्वतेन च।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः॥१५५॥

प्राहः सासपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः।
मित्रतां च पुरस्कृत्य किञ्चिद्द्विक्ष्यामि तच्छृणु॥१५६॥

नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति
धर्म च वासं च परिश्रमं च।
विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति
तस्मात्सन्तो धर्ममाहः प्रधानम्॥१५७॥

एकस्य धर्मेण सतां मतेन
सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः।
मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे
तस्मात्सन्तो धर्ममाहः प्रधानम्॥१५८॥

यम उवाच

निवर्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा
 स्वराक्षरव्यञ्जनहेतुयुक्तया ।
 वरं वृणीष्वेह विनाऽस्य जीवितं
 ददानि ते सर्वमनिन्दिते वरम्॥१५९॥

सावित्र्युवाच

च्युतः स्वराज्याद्वनवासमाश्रितो
 विनष्टचक्षुः शशुरो ममाश्रमे।
 स लब्धचक्षुर्बलवान्भवेन्नपस्-
 तव प्रसादाञ्चलनार्कसन्निभः॥१६०॥

यम उवाच

ददानि तेऽहं तमनिन्दिते वरं
 यथा त्वयोक्तं भविता च तत्था।
 तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये
 निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्॥१६१॥

सावित्र्युवाच

श्रमः कुतो भर्त्समीपतो हि मे
 यतो हि भर्ता मम सा गतिर्घुवा।
 यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः
 सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे॥१६२॥

सतां सकृत्सङ्गतमीप्सितं परं
 ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते।
 न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं
 ततः सतां सन्निवसेत्समागमे॥१६३॥

यम उवाच

मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं
 त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम्।
 विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
 वरं द्वितीयं वरयस्व भास्मिनि॥१६४॥

सावित्र्युवाच

हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः
 स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः।
 जह्यात्स्वधर्मान्न च मे गुरुर्यथा
 द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम्॥१६५॥

यम उवाच

स्वमेवं राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरान्-
 न च स्वधर्मात्परिहीयते नृपः।
 कृतेन कामेन मया नृपात्मजे
 निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्॥१६६॥

सावित्र्युवाच

प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता
 नियम्य चैता नयसे निकामया।
 ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं
 निबोध चेमां गिरमीरितां मया॥१६७॥

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
 अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥१६८॥

एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः।
 सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते॥१६९॥

यम उवाच

पिपासितस्येव भवेद्यथा पयस्-
 तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम्।
 विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
 वरं वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि॥१७०॥

सावित्र्युवाच

ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता
 भवत्पितुः पुत्रशतं तथौरसम्।
 कुलस्य सन्तानकरं च यद्भवेत्
 तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम्॥१७१॥

यम उवाच

कुलस्य सन्तानकरं सुवर्चसं
 शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे।
 कृतेन कामेन नराधिपात्मजे
 निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता॥१७२॥

सावित्र्युवाच

न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ
 मनो हि मे दूरतरं प्रधावति।
 अथ ब्रजन्नेव गिरं समुद्यतां
 मयोच्यमानां शृणु भूय एव च॥१७३॥

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवान्स्-
 ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः।
 समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजास्-
 ततस्तवेहेष्वर धर्मराजता॥१७४॥

आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः।
तस्मात्सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति॥१७५॥

सौःहृदात्सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते।
तस्मात्सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः॥१७६॥

यम उवाच

उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने
शुभे न ताटकं त्वद्वते श्रुतं मया।
अनेन तुष्टोऽस्मि विनाऽस्य जीवितं
वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च॥१७७॥

सावित्र्युवाच

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं
भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्धर्मम्।
शतं सुतानां बलवीर्यशालिना-
मिदं चतुर्थं वरयामि ते वरम्॥१७८॥

यम उवाच

शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां
भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले।
परिश्रमस्ते न भवेन्नपात्मजे
निर्वर्त दूरं हि पथस्त्वमागता॥१७९॥

सावित्र्युवाच

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।
सतां सद्भिर्नाफलः सङ्गमोऽस्ति
सन्ध्यो भयन्नानुवर्तन्ति सन्तः॥१८०॥

सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं
 सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति।
 सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन्
 सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः॥१८१॥

आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम्।
 सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति प्रतिक्रियाः॥१८२॥

न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो
 न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः।
 यस्मादेतत्रियतं सत्सु नित्यं
 तस्मात्सन्तो रक्षितारो भवन्ति॥१८३॥

यम उवाच

यथा यथा भाषसि धर्मसंहितं
 मनोनुकूलं सुपदं महार्थवत्।
 तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा
 वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते॥१८४॥

सावित्र्युवाच

न तेऽपवर्गः सुकृताद्विना कृतस्-
 तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानदा।
 वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
 यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना॥१८५॥

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
 न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्।
 न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
 न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्॥१८६॥

वरातिसर्गः शतपुत्रता मम
 त्वयैव दत्तो हियते च मे पतिः।
 वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
 तवैव सत्यं वचनं भविष्यति॥१८७॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्ता तु तं पाशं मुक्ता वैवस्वतो यमः।
 धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत्॥१८८॥

एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि।
 तौषितोऽहं त्वया साध्वि वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः॥१८९॥

अरोगस्त्व नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति।
 चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति॥१९०॥

इष्टा यज्ञैश्च धर्मेण ख्यातिं लोके गमिष्यति।
 त्वयि पुत्रशतं चैव सत्यवाङ्नयिष्यति॥१९१॥

ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियाः पुत्रपौत्रिणः।
 ख्यातास्त्वन्नामधेयाश्च भविष्यन्तीह शाश्वताः॥१९२॥

पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि।
 मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः।
 भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः॥१९३॥

एवं तस्यै वरं दत्त्वा धर्मराजः प्रतापवान्।
 निवर्तयित्वा सावित्रीं स्वमेव भवनं ययौ॥१९४॥

सावित्र्यपि यमे याते भर्तारं प्रतिलभ्य च।
 जगाम तत्र यत्रास्या भर्तुः शावं कलेवरम्॥१९५॥

सा भूमौ प्रेक्ष्य भर्तारमुपसृत्योपगृह्य च।
 उत्सङ्घे शिर आरोप्य भूमावुपविवेश ह॥१९६॥

संज्ञां च स पुनर्लङ्घा सावित्रीमन्यभाषत।
प्रोष्यागत इव प्रेम्णा पुनःपुनरुदीक्ष्य वै॥१९७॥

सुचिरं बत सुसोऽस्मि किमर्थं नावबोधितः।
क्व चासौ पुरुषः श्यामो योऽसौ मां सञ्चकर्ष ह॥१९८॥

सावित्र्यवाच

सुचिरं त्वं प्रसुसोऽसि ममाङ्गे पुरुषर्षभ।
गतः स भगवान्देवः प्रजासंयमनो यमः॥१९९॥

विश्रान्तोऽसि महाभाग विनिद्रश्च नृपात्मजा।
यदि शक्यं समुत्तिष्ठ विगाढां पश्य शर्वरीम्॥२००॥

मार्कण्डेय उवाच

उपलभ्य ततः संज्ञां सुखसुस इवोत्थितः।
दिशः सर्वा वनान्तांश्च निरीक्ष्योवाच सत्यवान्॥२०१॥

फलाहारोऽस्मि निष्क्रान्तस्त्वया सह सुमध्यमे।
ततः पाटयतः काष्ठं शिरसो मे रुजाऽभवत्॥२०२॥

शिरोभितापसन्तसः स्थातुं चिरमशकुवन्।
तवोत्सङ्गे प्रसुसोऽस्मि इति सर्वं स्मरे शुभे॥२०३॥

त्वयोपगृढस्य च मे निद्रयाऽपहृतं मनः।
ततोऽपश्यं तमो घोरं पुरुषं च महौजसम्॥२०४॥

तद्यदि त्वं विजानासि किं तद्वृहि सुमध्यमे।
स्वप्नो मे यदि वा दृष्टो यदि वा सत्यमेव तत्॥२०५॥

तमुवाचाथ सावित्री रजनी व्यवगाहते।
श्वस्ते सर्वं यथावृत्तमाख्यास्यामि नृपात्मज॥२०६॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते पितरौ पश्य सुव्रता।
विगाढा रजनी चेयं निवृत्तश्च दिवाकरः॥२०७॥

नक्तश्चराश्चरन्त्येते हृष्टाः कूराभिमाषिणः।
श्रूयन्ते पर्णशब्दाश्च मृगाणां चरतां वने॥२०८॥

एता घोरं शिवा नादान्दिशं दक्षिणपश्चिमाम्।
आस्थाय विरुवन्त्युग्राः कम्पयन्त्यो मनो मम॥२०९॥

सत्यवानुवाच

वनं प्रतिभयाकारं घनेन तमसा वृतम्।
न विज्ञास्यसि पन्थानं गन्तुं चैव न शक्ष्यसि॥२१०॥

सावित्र्युवाच

अस्मिन्नद्य वने दग्धे शुष्कवृक्षः स्थितो ज्वलन्।
वायुना धम्यमानोऽत्र दृश्यतेऽग्निः क्वचित् क्वचित्॥२११॥

ततोऽग्निमानयित्वेह ज्वालयिष्यामि सर्वतः।
काष्ठानीमानि सन्तोहं जहि सन्तापमात्मनः॥२१२॥

यदि नोत्सहसे गन्तुं सरुजं त्वां हि लक्षये।
न च ज्ञास्यसि पन्थानं तमसा संवृते वने॥२१३॥

शः प्रभाते वने दृश्ये यास्यावोऽनुमते तव।
वसावेह क्षपामेकां रुचिं यदि तेऽनघ॥२१४॥

सत्यवानुवाच

शिरोरुजा निवृत्ता मे स्वस्थान्यङ्गानि लक्षये।
मातापितृभ्यामिच्छामि संयोगं त्वत्प्रसादजम्॥२१५॥

न कदाचिद्विकाले हि गतपूर्वोऽहमाश्रमात्।
अनागतायां सन्ध्यायां माता मे प्ररुणद्धि माम्॥२१६॥

दिवाऽपि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरु मम।
विचिनोति हि मां तातः सहैवाश्रमवासिभिः॥२१७॥

मात्रा पित्रा च सुभृशं दुःखिताभ्यामहं पुरा।
उपालब्धश्च बहुशश्चिरेणागच्छसीति हि॥२१८॥

कात्ववस्था तयोरद्य मदर्थमिति चिन्तये।
तयोरदृश्ये मयि च महद्वःखं भविष्यति॥२१९॥

पुरा मामूचतुश्वैव रात्रावस्थायमाणकौ।
भृशं सुदुःखितौ वृद्धौ बहुशः प्रीतिसंयुतौ॥२२०॥

त्वया हीनौ न जीवाव मुहूर्तमपि पुत्रक।
यावद्विष्यसे पुत्र तावन्नौ जीवितं ध्रुवम्॥२२१॥

वृद्धयोरन्धयोर्दृष्टिस्त्वयि वंशः प्रतिष्ठितः।
ल्ययि पिण्डश्च कीर्तिश्च सन्तानश्चावयोरिति॥२२२॥

माता वृद्धा पिता वृद्धस्तयोर्यष्टिरहं किल।
तौ रात्रौ मामपश्यन्तौ कामवस्थां गमिष्यतः॥२२३॥

निद्रायाश्चाभ्यसूयामि यस्या हेतोः पिता मम।
माता च संशयं प्राप्ता मत्कृतेऽनपकारिणी॥२२४॥

अहं च संशयं प्राप्तः कृच्छ्रामापदमास्थितः।
मातापितृभ्यां हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे॥२२५॥

व्यक्तमाकुलया बुद्ध्या प्रज्ञाचक्षुः पिता मम।
एकैकमस्यां वेलायां पृच्छत्याश्रमवासिनम्॥२२६॥

नाऽऽत्मानमनुशोचामि यथाऽहं पितरं शुभे।
भर्तारं चाप्यनुगतां मातरं भृशदुःखिताम्॥२२७॥

मत्कृते न हि तावद्य सन्तापं परमेष्यतः।
जीवन्तावनुजीवामि भर्तव्यौ तौ मयेति ह॥२२८॥

तयोः प्रियं मे कर्तव्यमिति जीवामि चाप्यहम्।
परमं दैवतं तौ मे पूजनीयौ सदा मया।
तयोस्तु मे सदाऽस्त्येवं ब्रतमेतत्पुरातनम्॥२२९॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्ता स धर्मात्मा गुरुभक्तो गुरुप्रियः।
उच्छ्रित्य बाहू दुःखार्तः सुस्वरं प्ररुरोद ह॥२३०॥

ततोऽब्रवीत्था दृष्ट्वा भर्तारं शोककर्षितम्।
प्रमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां सावित्री धर्मचारिणी॥२३१॥

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं यदि दत्तं हुतं यदि।
श्वश्रूशशुरभर्तृणां मम पुण्याऽस्तु शर्वरी॥२३२॥

न स्मराम्युक्तपूर्वं वै स्वैरेष्वप्यनृतां गिरम्।
तेन सत्येन तावद्य ध्रियेतां श्वशुरौ मम॥२३३॥

सत्यवानुवाच

कामये दर्शनं पित्रोर्याहि सावित्रि माचिरम्।
अपि नाम गुरु तौ हि पश्येयं ध्रियमाणकौ॥२३४॥

पुरा मातुः पितुर्वाऽपि यदि पश्यामि विप्रियम्।
न जीविष्ये वरारोहे सत्येनाऽत्मानमालभे॥२३५॥

यदि धर्मे च ते बुद्धिर्मा चेज्ञीवन्तमिच्छसि।
मम प्रियं वा कर्तव्यं गच्छावाश्रममन्तिकात्॥२३६॥

मार्कण्डेय उवाच

सावित्री तत उत्थाय केशान् संयम्य भामिनी।
पतिमुत्थापयामास बाहुभ्यां परिगृह्य वै॥२३७॥

उत्ताय सत्यवांश्चापि प्रमृज्याङ्गानि पाणिना।
सर्वा दिशः समालोक्य कठिने दृष्टिमादधे॥२३८॥

तमुवाचाथसावित्री शः फलानि हरिष्यसि।
योगक्षेमार्थमेतं ते नेष्यामि परशुं त्वहम्॥२३९॥

कृत्वा कठिनभारं सा वृक्षशाखावलम्बिनम्।
गृहीत्वा परशुं भर्तुः सकाशे पुनरागमत्॥२४०॥

वामे स्कन्धे तु वामोरुर्भर्तुर्बाहुं निवेश्य च।
दक्षिणेन परिष्वज्य जगाम गजगामिनी॥२४१॥

सत्यवानुवाच

अभ्यासगमनाद्वीरु पन्थानो विदिता मम।
वृक्षान्तरालोकितया ज्योत्स्यया चापि लक्षयो॥२४२॥

आगतौ स्वः पथा येन फलान्यवचितानि च।
यथागतं शुभे गच्छ पन्थानं मा विचारय॥२४३॥

पलाशखण्डे चैतस्मिन्यन्था व्यावर्तते द्विधा।
तस्योत्तरेण यः पन्थास्तेन गच्छ त्वरस्व च॥२४४॥

स्वस्थोऽस्मि बलवानस्मि दिवक्षुः पितरावुभौ।
ब्रुवन्नेव त्वरायुक्तः सम्मायादाश्रमं प्रति॥२४५॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतित्रतामाहात्म्यपर्वणि
अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२९८॥

॥ एकोनत्रिशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु द्युमत्सेनो महाबलः।
लब्धचक्षुः प्रसन्नायां दृष्ट्यां सर्वं ददर्श ह ॥ २४६ ॥

स सर्वानाश्रमान्यत्वा शैव्यया सह भार्यया।
पुत्रहेतोः परामार्ति जगाम भरतर्षभ ॥ २४७ ॥

तावाश्रमान्नदीश्वैववनानि च सरांसि च।
तस्यां निशि विचिन्वन्तौ दम्पती परिजग्मतुः ॥ २४८ ॥

श्रुत्वा शब्दं तु यं कश्चिदुन्मुखो सुतशङ्कया।
सावित्रीसहितोऽभ्येति सत्यवानित्यभाषताम् ॥ २४९ ॥

भिन्नैश्च परुषैः पादैः सव्रणैः शोणितोक्षितैः।
कुशकण्टकविद्धाङ्गावुनमत्ताविव धावतः ॥ २५० ॥

ततोऽभिसृत्य तैर्विप्रैः सर्वैराश्रमवासिभिः।
परिवार्य समाधास्य तावानीतौ स्वमाश्रमम् ॥ २५१ ॥

तत्र भार्यासहायः स वृतो वृद्धैस्तपोधनैः।
आश्वासितोऽपि चित्रार्थैः पूर्वराजकथाश्रयैः ॥ २५२ ॥

ततस्तौ पुनराश्वस्तौ वृद्धौ पुत्रदिव्यक्षया।
बाल्यवृत्तानि पुत्रस्य सावित्र्या दर्शनानि च।
शोकं जग्मतुरन्योन्यं स्मरन्तौ भृशदुःखितौ ॥ २५३ ॥

हा पुत्र हा साध्वि वधु क्रासि क्रासीत्यरोदताम्।
ब्राह्मणः सत्यवाक्येषामुवाचेदं तयोर्वचः ॥ २५४ ॥

सुवर्चा उवाच

यथास्य भार्या सावित्री तपसा च दमेन च।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान्॥२५५॥

गौतम उवाच

वेदाः साङ्गा मयाऽधीतास्तपो मे सञ्चितं महत्।
कौमारब्रह्मचर्यं च गुरवोऽग्निश्च तोषिताः॥२५६॥

समाहितेन चीर्णानि सर्वाण्येव व्रतानि मे।
वायुभक्षोपवासश्च कृतो मे विधिवत्सदा॥२५७॥

अनेन तपसा वेद्यि सर्वं परचिकीर्षितम्।
सत्यमेतत्रिबोधध्वं ग्रियते सत्यवानिति॥२५८॥

शिष्य उवाच

उपाध्यायस्य मे वक्राद्यथा वाक्यं विनिःसृतम्।
नैव जातु भवेन्मिथ्या तथा जीवति सत्यवान्॥२५९॥

ऋषय ऊचुः

यथाऽस्य भार्या सावित्री सर्वैरेव सुलक्षणैः।
अवैधव्यकरैर्युक्ता तथा जीवति सत्यवान्॥२६०॥

भारद्वाज उवाच

यथाऽस्य भार्या सावित्री तपसा च दमेन च।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान्॥२६१॥

दाल्म्य उवाच

यथा दृष्टिः प्रवृत्ता ते सावित्र्याश्च यथा व्रतम्।
गताऽहारमकृत्वैव तथा जीवति सत्यवान्॥२६२॥

आपस्तम्ब उवाच

यथा वदन्ति शान्तायां दिशि वै मृगपक्षिणः।
पार्थिवीं चैववृद्धिं ते तथा जीवति सत्यवान्॥२६३॥

धौम्य उवाच

सर्वैर्गुणैरुपेतस्ते यथा पुत्रो जनप्रियः।
दीर्घायुर्लक्षणोपेतस्तथा जीवति सत्यवान्॥२६४॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमाश्वासितस्तैस्तु सत्यवाग्भिस्तपस्विभिः।
तांस्तान्विगणयन्सर्वास्ततः स्थिर इवाभवत्॥२६५॥

ततो मुहूर्तात्सावित्री भर्त्रा सत्यवता सह।
आजगामाऽश्रमं रात्रौ प्रहृष्टा प्रविवेश ह॥२६६॥

दृष्टा चोत्पतिताः सर्वे हर्षं जग्मुश्च ते द्विजाः।
कण्ठं माता पिता चास्य समालङ्घाभ्यरोदताम्॥२६७॥

ब्राह्मणा ऊचुः

पुत्रेण सङ्गतं त्वां तु चक्षुष्मन्तं निरीक्ष्य च।
सर्वे वयं वै पृच्छामो वृद्धिं वै पृथिवीपते॥२६८॥

समागमेन पुत्रस्य सावित्र्या दर्शनेन च।
चक्षुषश्चाऽत्मनो लाभात्रिभिर्दिष्ट्या विवर्धसे॥२६९॥

सर्वैरस्माभिरुक्तं यत्था तत्रात्र संशयः।
भूयोभूयः समृद्धिस्ते क्षिप्रमेव भविष्यति॥२७०॥

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽग्निं तत्र सञ्चाल्य द्विजास्ते सर्वं एव हि।
उपासाश्वक्रिरे पार्थ द्युमत्सेनं महीपतिम्॥२७१॥

शैव्या च सत्यवांश्चैव सावित्री चैकतः स्थिताः।
सर्वैस्तैरभ्यनुज्ञाता विशोका समुपाविशन्॥२७२॥

ततो राज्ञा सहासीनाः सर्वे ते वनवासिनः।
जातकौतूहलाः पार्थं पप्रच्छुर्नृपतेः सुतम्॥२७३॥

प्रागेव नाऽऽगतं कस्मात्सभार्येण त्वया विभो।
विरात्रे चाऽऽगतं कस्मात्को नु बन्धस्तवाभवत्॥२७४॥

सन्तापितः पिता माता वयं चैव नृपात्मजा।
कस्मादिति न जानीमस्तत्सर्वं वक्तुमर्हिसि॥२७५॥

सत्यवानुवाच

पित्राऽहमभ्यनुज्ञातः सावित्रीसहितो गतः।
अथ मेऽभूच्छिरोदुःखं वने काषाणि भिन्दतः॥२७६॥

सुसश्वाहं वेदनया चिरमित्युपलक्षये।
तावत्कालं न च मया सुसपूर्वं कदाचन॥२७७॥

सर्वेषामेव भवतां सन्तापो मा भवेदिति।
अतो विरात्रागमनं नान्यदस्तीह कारणम्॥२७८॥

गौतम उवाच

अकस्माच्क्षुषः प्राप्तिर्द्युमत्सेनस्य ते पितुः।
नास्य त्वं कारणं वेत्सि सावित्री वक्तुमर्हति॥२७९॥

श्रोतुमिच्छामि सावित्रि त्वं हि वेत्थ परावरम्।
त्वां हि जानामि सावित्रि सावित्रीमिव तेजसा॥२८०॥

त्वमत्र हेतुं जानीषे तस्मात्सत्यं निरुच्यताम्।
रहस्यं यदि ते नास्ति किञ्चिदत्र वदस्व नः॥२८१॥

सावित्रिवाच

एवमेतद्यथा वेत्थ सङ्कल्पो नान्यथा हि वः।
न हि किञ्चिद्रहस्यं मे श्रूयतां तथ्यमेव यत्॥२८२॥

मृत्युर्मे पत्युराख्यातो नारदेन महात्मना।
स चाद्य दिवसः प्राप्तस्ततो नैनं जहाम्यहम्॥२८३॥

सुसं चैनं यमः साक्षादुपागच्छत्सकिङ्करः।
स एनमनयद्वद्धा दिशं पितृनिषेविताम्॥२८४॥

अस्तौषं तमहं देवं सत्येन वचसा विभुम्।
पश्च वै तेन मे दत्ता वराः शृणुत तान्मम॥२८५॥

चक्षुषी च स्वराज्यश्च द्वौ वरौ श्वशुरस्य मे।
लब्धं पितुः पुत्रशतं पुत्राणां चात्मनः शतम्॥२८६॥

चतुर्वर्षशतायुर्मे भर्ता लब्धश्च सत्यवान्।
भर्तुर्हि जीवितार्थं तु मया चीर्णं त्विदं ब्रतम्॥२८७॥

एतत्सर्वं मयाऽऽख्यातं कारणं विस्तरेण वः।
यथावृत्तं सुखोदर्कमिदं दुःखं महन्मम॥२८८॥

ऋषय ऊचुः

निमज्जमानं व्यसनैरभिद्रुतं
कुलं नरेन्द्रस्य तमोमये ह्रदे।
त्वया सुशीलत्रतपुण्यया कुलं
समुद्धृतं साध्वि पुनः कुलीनया॥२८९॥

मार्कण्डेय उवाच

तथा प्रशस्य ह्यभिपूज्य चैव
वरम्भियं तामृषयः समागताः।
नरेन्द्रमामच्य सपुत्रमञ्जसा
शिवेन जग्मुर्दिताः स्वमालयम्॥२९०॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि
एकोनत्रिशततमोऽध्यायः॥२९१॥

॥त्रिशततमोऽध्यायः॥३००॥॥

मार्कण्डेय उवाच

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते सूर्यमण्डले।
कृतपौर्वाङ्गिकाः सर्वे समेयुस्ते तपोधनाः॥२९१॥

तदेव सर्वं सावित्र्या महाभाग्यं महर्षयः।
द्युमत्सेनाय नातृप्यन्कथयन्तः पुनः पुनः॥२९२॥

ततः प्रकृतयः सर्वाः साल्वेभ्योऽभ्यागता नृपम्।
आचर्ख्युर्निर्हतं चैव स्वेनामात्येन तं द्विषम्॥२९३॥

तं मन्त्रिणा हतं प्रोच्य ससहायं सबान्धवम्।
न्यवेदयन्यथावृत्तं विद्वुतं च द्विषद्वलम्॥२९४॥

ऐकमत्यं च सर्वस्य जनस्य स्वं नृपं प्रति।
सचक्षुर्वाऽप्यचक्षुर्वा स नो राजा भवत्विति॥२९५॥

अनेन निश्चयेनेह वयं प्रस्थापिता नृप।
प्राप्तानीमानि यानानि चतुरङ्गं च ते बलम्॥२९६॥

प्रयाहि राजभद्रं ते घुष्टस्ते नगरे जयः।
अध्यास्त्व चिररात्राय पितृपैतामहं पदम्॥२९७॥

मार्कण्डेय उवाच

चक्षुष्मन्तं च तं दृष्ट्वा राजानं वपुषाऽन्वितम्।
मूर्धा निपतिताः सर्वेविस्मयोत्कुल्लोचनाः॥२९८॥

ततोऽभिवाद्य तान्वृद्धान्विजानाश्रमवासिनः।
तैश्चाभिपूजितः सर्वैः प्रययौ नगरं प्रति॥२९९॥

शैव्या च सह सावित्र्या स्वास्तीर्णेन सुवर्चसा।
नरयुक्तेन यानेन प्रययौ सेनया वृता॥३००॥

ततोऽभिषिष्ठिचुः प्रीत्या द्युमत्सेनं पुरोहिताः।
पुत्रं चास्य महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयन्॥३०१॥

ततः कालेन महता सावित्र्याः कीर्तिवर्धनम्।
तद्वै पुत्रशतं जज्ञे शूराणामनिवर्त्तिनाम्॥३०२॥

भ्रातृणां सोदराणां च तथैवास्याभवच्छतम्।
मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहाबलम्॥३०३॥

एवमात्मा पिता माता श्वशूः श्वशुर एव च।
भर्तुः कुलं च सावित्र्या सर्वं कृच्छ्रात्समुद्घृतम्॥३०४॥

तथैवैषा हि कल्याणी द्वौपदी शीलसम्मता।
तारयिष्यति वः सर्वान्सावित्रीव कुलाङ्गना॥३०५॥

वैशाम्पायन उवाच

एवं स पाण्डवस्तेन अनुनीतो महात्मना।
विशोको विज्वरो राजन्काम्यके न्यवसत्तदा॥३०६॥

यश्वेदं शृणुयाद्वत्त्या सावित्राख्यानमुत्तमम्।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः॥३०७॥

॥इति श्रीमन्महाभारते अरण्यपर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि
त्रिशततमोऽध्यायः॥३००॥

पतिव्रतामाहात्म्यपर्व समाप्तम्॥१९॥

